तृतीय अध्याय

पशुपालन सम्बन्धी संगठन एवं नियोजन

सामान्य जन–जीवन का प्रमुख आर्थिक आधार कृषि होने के कारण तत्कालीन पशुपालन उन्नतावस्था में था। पशु राज्य की आय के प्रमुख साधन थे।[1] इसलिए पशुपालन की तरफ विशेष ध्यान दिया जाता था। पशुओं के चारे के लिए राज्य की ओर से चारागाह की व्यवस्था थी। चारागाहों से राजकीय आय होती थी। पशुओं एवं चारागाह पर लगने वाला कर 'जंघाकर' कहलाता था।[2] पशुओं के चारे के लिये राज्य की ओर से प्रायः प्रत्येक गांव की बाह्य सीमा पर चारागाह बनाये जाते थे।[3] राजाओं की गोशालायें होती थीं, जिनमें गायों की सुरक्षा–संरक्षण के लिये कर्मचारी नियुक्त होते थे। अनाथ और सनाथ सभी पशुओं के भोजन–पानी की व्यवस्था थी।[4]

आदिपुराण में तीन करोड़ व्रजों का उल्लेख आया है और बताया गया है कि राजा (सरकारी) पशुओं का निरीक्षण करते थे।[5] आजीविका के मुख्य साधनों में पशुपालन कृषि के अन्तर्गत आता था। मनुष्य की वैभवसम्पन्नता पशुओं की संख्या पर आधारित थी। गाय और भैंसों से युक्त परिवार को सुखी माना जाता था। उस समय घी, दूध, दही पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे तथा उनका प्रयोग

भोजन में होता था, जिससे भोजन स्वादिष्ट हो जाता था। गाय, भैंस, बकरी और भेड़ों का दूध प्रयोग में लाया जाता था। विभिन्न देशों के घी एवं दूध के स्वाद में अन्तर मिलता है। कलिंग देश की गाय का दूध और अपरान्त देश का घी बहुत स्वादिष्ट होता था।

पशु तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के सुदृढ़ आधार थे। व्यापारिक गतिविधियाँ उनके ऊपर ही निर्भर थीं। कृषि के साथ पशुपालन एक उद्योग के रूप में प्रचलित था। कृषि और पशुपालन एक दूसरे के पूरक थे। पशुपालन के अन्तर्गत प्रायः गाय, बैल, भैंस आदि को ही ग्रामीण लोग पालते थे। इसके अतिरिक्त हाथी, घोड़े, खच्चर, गधे, ऊँट आदि को पालने का कार्य प्रायः राजदरबारों में किया जाता था, क्योंकि इनका उपयोग सेना और उसके अंगों के रूप में होता था। चतुरंगिणी सेना घोड़ों और हाथियों के अभाव में पूर्ण नहीं होती थी। कुछ पशु सेना में भारवाही होते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना में 30,000 अश्वरोही, 9,000 हाथी और 8,000 रथ थे।[6]

मौर्यकालीन संगठन एवं नियोजन का दूसरा महत्वपूर्ण आधार पशुपालन था। आर्थिक संयोजन में पशुओं का महत्वपूर्ण स्थान था। पशुओं को सम्पत्ति के रूप में स्वीकार किया गया था। इस काल के आर्थिक जीवन में पशुओं का कई दृष्टियों से महत्व था। अन्न, बल, सौन्दर्य एवं सुख प्रदान करने में पशुओं की महत्ता स्वीकार की गयी

थी। गाय–भैंस, दूध एवं मांस के लिए पाले जाते थे और भेड़–बकरी, दूध, मांस, खाल तथा ऊन के लिए। बैल, अश्व, गधे, खच्चर एवं ऊँट भारवाही पशु थे और गाड़ी/रथ भी खींचते थे। बैल और भैंसे हल जोतते थे। हाथी एवं घोड़े युद्ध तथा सवारी के काम आते थे। कुत्ते रखवाली के लिए पाले जाते थे और शिकार करने में भी सहायता करते थे। जिनसेनाचार्य के अनुसार कलिंग की गायों का दूध अधिक मीठा तथा पश्चिमी प्रदेशों की गायों का अधिक स्वादिष्ट होता था।[7] बछड़ों के समूह से उत्कंठित हो रही, हाल में ही ब्यायी गायों का भी उल्लेख मिलता हैं।[8]

मनुष्यवत पशुओं के नाम रखे जाते थे। तीन बरस के कम्बल और सम्बल नाम के दो बछड़ों को भेंट में दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[9] बैल (वृष) अत्यधिक महत्वपूर्ण पशु थे क्योंकि ये अधिक भार धारण करने में समर्थ बताए गए हैं। ।[10] सभी पशुओं की खाल का किसी न किसी रूप में उपयोग किया जाता था। उनकी सींग, खाल, लोम, पंजे, खुर, चर्बी, स्नायु, खोपड़ी आदि से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनायी जाती थी। पशुओं के गोबर, हड्डियों का खाद के रूप में उपयोग किया जाता था। गोबर को मिट्टी में मिलाकर मृत्पात्र बनाए जाते थे। गोबर से फर्श एवं दीवारों आदि की लिपाई की जाती थी। गाय का गोबर धार्मिक अनुष्ठानों में भी प्रयुक्त होता था।

पशुपालन ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं था, नगरों में भी उसका आधिक्य था। राजगिरि में रहने वाले गाथापतियों के पास हजारों की संख्या में पशु थे। आर्थिक सम्पदा के रूप में पशुओं में गोधन का विशेष महत्व था।[11] पशुओं से प्राप्त दूध और उससे बनाये गये दही तथा घी का व्यापार होता था। आभीर पूर्ण घड़े लेकर नगरों में व्यापार हेतु जाते थे। उल्लेख मिलता है कि आभीर के घड़े गाड़ियों में भरकर चम्पा नगरी में व्यापार के लिये ले जाये जाते थे।[12] ग्वालों द्वारा सपत्नीक मटकों में घी भर कर बेचने के लिए नगरों में ले जाया जाता था।[13]

पशुपालन प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग था। पशुओं का रक्षक **'गोप'** कहलाता था। वैदिक साहित्य में गाय, भैंस, घोड़े, भेड़, बकरी आदि का उल्लेख है और ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि इन पशुओं की रक्षा और पालन करें। पशुधन बढ़ाने की भी प्रार्थना की गई है।[14] ऋग्वेद में गाय के महत्व को समझ कर ही उसे पूजनीय मानते हुए ऋषियों ने गाय को 'अध्न्या हिगो' कहा है।[15] भगवान पूषा से गायों की रक्षा की प्रार्थना की गई है।[16] बैल अथवा सांड़ के लिए अनेक शब्दों, जैसे वृषभ, वृष, वृषण का प्रयोग हुआ है तथा वर्णन किया गया है कि बैल हल जोतने, गाड़ियां खींचने, खलिहान में अनाज तैयार करने आदि कार्यों में प्रयुक्त होते हैं।[17]

शतपथ ब्राह्मण में पशु को ही समृद्धि तथा अन्न कहा गया है।[18] धर्म का अभ्युदय उन्हीं परिवारों में होता है जहाँ पशु बड़ी संख्या में पाले जाते हैं।[19] दान–स्तुतियों में राजाओं एवं समृद्ध व्यक्तियों द्वारा बड़ी संख्या में पशुओं को दान में देने के विवरण मिलते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण (8.22,37) से हमें पता चलता है कि अंग वैरोचन ने राजसूय यज्ञ के अवसर पर अपने पुरोहित आत्रेय को 10 हजार हाथी, 88 हजार अश्व तथा इनसे भी अधिक संख्या में गाएं दक्षिणा में दी थीं। पशुओं के महत्व के कारण ही वैदिक काल में उनके अपहरण के लिए प्रायः आक्रमण एवं जनजातीय युद्ध होते रहते थे और शत्रुओं द्वारा अपहृत किए गए गाय–बैलों आदि को वापस दिलाना इंद्र के महत्वपूर्ण कर्त्तव्यों में से एक था।

अर्थ–व्यवस्था में पशुधन के महत्व का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि अजीगर्त ने 100 गायों की प्राप्ति के लिए अपने पुत्र शुणःशेप को बेच दिया था।[20] रामायण और महाभारत में पशुपालन एक नियमित व्यवसाय के रूप में वर्णित है। सहदेव और नकुल, राजा विराट के यहाँ क्रमशः पशुपालन और अश्वपालन का कार्य किये थे। सभी वाहनों में बैल के वाहन को उत्तम बताया गया है।[21] पाणिनि ने भी पशुओं के चरने के लिए चारागाह या गोचर का उल्लेख किया है।[22] कौटिल्य ने लिखा है पशुओं के कल्याण के लिए पशुपालन उद्योग पर राज्य का नियंत्रण होना आवश्यक है। इसके लिए कौटिल्य ने कई अधिकारियों को नियुक्त करने का

निर्देश दिया है जिनके अधीन अन्य कर्मचारी भी होते थे। इन अधिकारियों में गोध्यक्ष[23] एवं उसके कार्य, अश्वाध्यक्ष[24] एवं उनके कार्य तथा हस्ति अध्यक्ष[25] एवं उनके कार्यों का उल्लेख है।

गोपालन उद्योग के अन्तर्गत कौटिल्य के मतानुसार अनेक बातें सन्निहित हैं और इसका क्षेत्र भी विस्तृत है। गोपालन के अन्तर्गत दूध देने वाले पशुओं का पालन, उनसे दूध प्राप्त करना, दूध से अन्य उपयोगी वस्तुएं जैसे– दही, मक्खन, घृत आदि तैयार करना, ऊन वाले पशुओं का पालन और उनसे ऊन प्राप्त करना, मृत पशुओं के शरीर से उपयोगी चीजें जैसे खाल, सींग आदि एकत्र करना, पशुओं के बच्चों का पालन एवं उन्हें विभिन्न उपयोग के लिए तैयार करना, पशुओं के रोग निवारण और चिकित्सा तथा पशुओं का क्षय रोकना आदि सभी चीजें आती हैं।[26] इसके अतिरिक्त अश्वपालन[27] तथा हस्तिपालन[28] के लिए भी विशेष नियम आदि निर्धारित थे। विष्णु पुराण में वर्णित है कि जब मनुष्यों ने वृत्ति की याचना पृथु से की उस समय पृथु के संरक्षण में ही कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्य का विकास हुआ था।[29]

मौर्य काल में पशुधन के महत्व को भली भांति समझा गया था और पशुपालन पर पर्याप्त ध्यान दिया गया था। अर्थव्यवस्था में पशुओं की उपयोगिता दृष्टिगोचर होती है। व्यापारिक गतिविधियां ऊंटों, बैलों तथा बैलगाड़ियों के काफिलों पर निर्भर करती थीं।

कौटिल्य के अनुसार कृषि संबंधी कार्य–व्यवसाय पशुपालन पर निर्भर होते हैं। अतः गायों एवं ग्वालों के बाहुल्य वाला क्षेत्र श्रेष्ठ होता है।[30] अर्थशास्त्र का यह कथन कि परिवार के पशुधन के बंटवारे में ब्राह्मण पुत्र को बकरियां, क्षत्रिय को अश्व और वैश्य एवं शूद्र को क्रमशः गाएं तथा भेड़ें मिलती थीं[31], जो यह दर्शाता है कि सभी वर्णों के लोग पशुपालन में लगे थे।

कौटिल्य[32] ने गाय, भैंस, बकरी, भेंड़, गधा, ऊँट, घोड़ा, खच्चर आदि को ब्रज के अन्तर्गत रखा और मृत पशु के बाल, चर्म, आंत, दांत, खुर एवं हड्डी आदि का संग्रह करने की सलाह दी।[33] अर्थशास्त्र[34] में वर्णित 6 प्रकार के कवचों में मछली, गैंडा, नीलगाय, हाथी तथा बैल के चर्म, खुर और सींगों को मिलाकर बनाया गया कवच भी शामिल है। राज्य की ओर से भी बड़ी संख्या में गाय, बछड़े, बैल, सांड, भैंस–भैंसे, हाथी, घोड़े पाले जाते थे और वन्य पशुओं को भी पालतू बनाने के लिए प्रयास किए जाते थे।[35] अश्व एवं हस्तिपालन पर राज्य का ही एकाधिकार था।

अर्थशास्त्र से हमें ज्ञात होता है कि चरागाहों, गाय–बैलों, अश्वों एवं हाथियों के लिए क्रमशः विवीताध्यक्ष, गोऽध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष और हस्त्याध्यक्ष संज्ञक अधिकारी नियुक्त किए गए थे। साथ ही पशुओं के प्रजनन, दुग्धशालाओं और मांस विक्रय को भी राज्य द्वारा नियंत्रित किया गया था। पशुओं के व्यापारी द्वारा प्रत्येक पशु की

बिक्री पर उसके मूल्य का चतुर्थांश गोऽध्यक्ष को देय था।[36] कौटिल्य के अनुसार मुर्गे एवं सुअर पालने वाले को इन पशुओं से होने वाली आय का आधा भाग, भेड़–बकरी पालक को 1/6 और गाय, भैंस, खच्चर, गधा और ऊँट पालने वाले को 1/10 भाग राजा को कर के रूप में देना चाहिए।[37] परन्तु ग्रामदेवता के नाम से छोड़े गए सांड, 10 दिन की ब्याई गाय और गायों के साथ रहने वाले बछड़ों पर कोई कर नहीं लिया जाता था।[38]

अशोक के शिलालेख में चरागाहों के अधिकारियों का उल्लेख धर्ममहामात्रों के साथ हुआ है।[39] इससे व्रजभूमिकों के महत्व का अनुमान किया जा सकता है। मेगस्थनीज ने पशुविभाग के प्रमुख तथा उसे सहयोग देने वाले पांच अन्य अधिकारियों का उल्लेख किया है।[40] गोप संज्ञक अधिकारी ग्राम के खेतों एवं बगीचों आदि के साथ चरागाहों का भी ब्यौरा अपने रजिस्टर में दर्ज करता था। कौटिल्य[41] के अनुसार गांव से 400 हाथ की दूरी पर पशुओं के विश्रामादि के लिए स्तंभों से घिरा बाड़ा बनाया जाना चाहिए। चरागाह जलाने वाले व्यक्ति को कौटिल्य[42] ने उसी आग में जला दिए जाने का प्रावधान किया था।

पशुओं की सुरक्षा, चिकित्सा और कल्याण पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। बड़े पशुओं के अपहरण/चोरी के लिए 200 से 500 पण तक के अर्थदण्ड का प्रावधान किया गया था।[43] दूसरे

राजा अथवा वन में रहने वाले लोगों द्वारा चुराए गए चौपायों को बरामद कर उनके मालिक को देना राजा का दायित्व बताया गया है।[44] छोटे पशुओं को डंडे/लाठी से पीटने पर एक–दो पण का अर्थदण्ड और पशु के शरीर से खून निकलने पर इससे दो गुना दण्ड देय था। गाय–भैंस जैसे बड़े पशुओं को चोट पहुँचाने वाले पर उपर्युक्त से दोगुना दण्ड तथा उपचार में होने वाला व्यय वसूल किए जाने का नियम बना था।[45] कौटिल्य के अनुसार सींग एवं दांत वाले पशुओं की आपसी लड़ाई में जो पशु मर जाता था, उसके मालिक को मारने वाले पशु के मालिक द्वारा मृत पशु का मूल्य तथा उतनी ही धनराशि दण्ड स्वरूप देय थी।[46]

मेगस्थनीज[47] एवं कौटिल्य[48] के विवरणों से हमें ज्ञात होता है कि बीमार अथवा किन्हीं अन्य कारणों से असमर्थ घोड़ों आदि का उपयोग करना निषिद्ध था। हाथियों तथा घोड़ों के कुशलक्षेम के लिए निराजना नामक धार्मिक अनुष्ठान किए जाने का भी उल्लेख है। पशुओं की चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की गई थी। कौटिल्य ने मृग, बछड़ा, सांड़, गाय, गैंड़ा, भैंसा, मोर तथा मछली पकड़ने/मारने का निषेध किया और उनको मारने या पकड़ने वालों के लिए उत्तम साहस के दण्ड का प्रावधान किया है। उनके अनुसार हाथी, अश्व, बैल, गर्दभ, मछली, सारस, हंस, चक्रवाक, मोर, तोता, मैना, बुलबुल, तीतर तथा कुक्कुट की रक्षा करनी चाहिए और इन्हें पकड़ने या मारने वाले को प्रथम साहस का दण्ड दिया जाना

चाहिए। आरक्षित वनों से पकड़े गए पक्षियों तथा मृग आदि पशुओं के मूल्य का छठां भाग लेकर उन्हें सरकारी जंगलों में पुनः छोड़ देना चाहिए। ऋषियों के आश्रम से पशु–पक्षियों को पकड़ने वाले के उत्तम साहस के दण्ड का प्रावधान था।

अर्थशास्त्र में यह भी कहा गया है कि जो पशु हिंसक हो; जिनका कोई मालिक न हो; जो राज्य द्वारा रक्षित जंगलों अथवा ऋषियों के आश्रमों का न हो; उनका शिकार करने वाले से सूनाध्यक्ष उनके मूल्य का छठां भाग सरकारी कर के रूप में वसूल करें। परन्तु सरकारी जंगलों से हिंसक पशुओं अथवा जलचरों के बाहर निकल जाने पर उन्हें मारा या पकड़ा जा सकता था। मछली जैसे अहिंसक प्राणियों को पकड़ने, प्रहार करने या मारने वाले के लिए 26–3/4 पण और मृग आदि पशुओं का वध करने वाले के लिए 53–1/2 पण अर्थदण्ड निर्धारित किए गए थे।[49] अभक्ष्य पशुओं के मांस विक्रेता का हाथ–पैर काट देने का प्रावधान किया गया था।[50] एलियन ने लिखा है कि भारत के लोग वन्य पशुओं को भी उपेक्षा अथवा घृणा की दृष्टि से नहीं देखते।

अशोक के शिलालेख से हमें पता चलता है कि पहले मौर्यों की पाकशाला में प्रतिदिन हजारों, लाखों पशु–पक्षी भोजन के लिए मारे जाते थे। किन्तु अशोक ने प्रतिदिन केवल दो मोर एवं एक मृग

मारे जाने की ही अनुमति दी थी। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया था कि आगे चलकर मृग भी नहीं मारे जायेंगे।[51]

स्तंभ–लेख पांच के अनुसार अशोक ने निम्नलिखित पशु–पक्षियों एवं जलचरों आदि के वध का निषेध किया था – खरगोश, बिल्ली, चूहा, गैंड़ा, साही, सांड़, बारहसिंगा, गर्भवती या दूध पिलाती बकरी, भेड़, शूकरी एवं इनके छः माह से कम आयु के बच्चे, मुर्गा, हंस, कुंआ, कछुवी, हड्डी रहित तथा शकुल प्रजातियों की मछलियां, गंगा कुक्कुट, केकड़ा, तोता, मैना, अरूण, चक्रवाक, चमगादड़, जंगली एवं श्वेत कपोत, नंदीमुख आदि। अशोक ने बैल, बकरा, मेढ़ा एवं सुअर को दागने पर भी रोक लगा दी थी। इस स्तंभ–लेख में कुछ विशिष्ट शुभ दिनों में ही उपर्युक्त पशु–पक्षियों को मारने/दागने पर प्रतिबंध की बात कही गई है।[52] इस सूची में गाय का शामिल न किया जाना ध्यातव्य है।

स्तंभ–लेख सात में वर्णित है कि अशोक ने मार्गों के किनारे मनुष्यों एवं पशुओं की सुविधा के लिए छायादार वृक्ष लगवाए थे और प्रति ढाई या आठ कोस की दूरी पर कुंए खुदवाए एवं विश्रामालय बनवाए थे।[53] विभिन्न पशुओं के विषय में अन्य विवरण मुख्यतः अर्थशास्त्र[54] में ही प्राप्य हैं जो संक्षेप में निम्नवत् हैं – पाणिनि की भांति कौटिल्य ने भी दूध पीने वाली बछिया, पठौरी बछिया, गाभिन, दूध देने वाली एवं अधेड़ और बांझ गाय–भैंस का उल्लेख किया है।

इसी प्रकार दूध पीता बछड़ा (वत्स), बड़ा बछड़ा (वत्सतर), कृषि योग्य बैल (दम्य), बोझा ढोने योग्य (वहिन), हल जोतने योग्य बैल (उक्षाण) तथा सांड (वृष) के भी उल्लेख हैं। भैंसे के चार प्रकार बताए गए हैं – जुएं, हल तथा गाड़ी में जोतने योग्य सांड़, जिसका मांस खाया जाए (सूनामहिष) और जो भारवाही (पृष्ठस्कंध) हो।

अर्थशास्त्र में उत्तम प्रजाति के युवा एवं बलिष्ठ बैलों तथा रथ में जुतने वाले बैलों की खुराक निम्नवत बताई गई है – दस तुला हरी घास, इससे दुगनी भूसी, दस आढक सानी, 5 पल नमक, एक प्रस्थ पीने के लिए तेल, 100 पल मांस तथा एक आढक दही, एक द्रोण जौ या उड़द की सानी। बैल की खुराक की तीन चौथाई मात्रा भैंसो, दूध देने वाली गायों तथा ऊँटों की खुराक थी। इस संदर्भ में कौटिल्य ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि पशुओं की उपयोगिता एवं कार्य के आधार पर ही उन्हें खुराक दी जानी चाहिए, सभी को एक समान नहीं। किन्तु घास सभी पशुओं को भरपेट खिलानी चाहिए।

अर्थशास्त्र में यह भी बताया गया है कि एक (अच्छी दुधारू) गाय के एक द्रोण दूध में एक प्रस्थ घी और भैंस के एक द्रोण दूध में पांच प्रस्थ घी निकलता है। कौटिल्य के अनुसार सावन से पौष मास तक गाय–भैंसों को दो बार दुहना चाहिए और माघ से आषाढ़ तक केवल एक बार। चरवाहे द्वारा गाय को मारने या मरवाने पर

उसे मृत्युदण्ड दिए जाने का प्रावधान किया गया था। कौटिल्य[55] ने हाथियों तथा घोड़ों का सोने–चांदी जैसी बहुमूल्य धातुओं के साथ उल्लेख किया है। उनके अनुसार अश्वाध्यक्ष को घोड़ों की नस्ल, आयु, रंग, चिन्ह–समूह, कार्य एवं उत्पत्ति स्थान का विवरण अपने रजिस्टर में दर्ज करना चाहिए; उनके रहने के लिए घुड़साल बनवानी चाहिए, सांड अश्वों, प्रसवा घोड़ियों तथा छः मास से लेकर तीन वर्ष तक के बछेड़ों को बांधने के लिए पृथक् स्थानों की व्यवस्था करनी चाहिए।

कौटिल्य[56] ने कंबोज, सिंध, आरट्ट और वनायु के घोड़ों को उत्तम; बाल्हीक (बल्ख), पापेयक (पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत), सौवीर एवं तैत्तल जनपदों के अश्वों को मध्यम और अन्य क्षेत्रों के अश्वों को अधम कोटि का बताया है। आकार आदि के आधार पर अर्थशास्त्र में घोड़ों को तीन वर्गों में रखा गया है –

1. उत्तम अश्व – यह 80 अंगुल ऊँचा, 160 अंगुल लम्बा तथा 32 अंगुल खाब वाला होता था।

2. मध्यम अश्व – यह उपर्युक्त परिमाणों से 3 अंगुल कम होता था।

3. अधम अश्व – इस वर्ग का अश्व मध्यम कोटि के घोड़े से तीन अंगुल छोटा होता था।

अर्थशास्त्र में इन तीनों प्रकार के घोड़ों की खुराकों पर भी प्रकाश डाला गया है। जो घोड़े बलिष्ठ होने पर भी युद्ध के लिए अनुपयुक्त होते थे, उन्हें नस्ल सुधारने के लिए सांड बनाने की सलाह दी गई है।

राजा के बीमार घोड़ों की यथासमय चिकित्सा न की जाने के कारण उनकी बीमारी के बढ़ जाने पर इलाज में हुए व्यय का दो गुना दंड चिकित्सक द्वारा अश्वाध्यक्ष को देय था और मृत्यु हो जाने पर उसे घोड़े की पूरी कीमत चुकानी पड़ती थी। आश्विन मास की नवमी को घोड़ों के स्वास्थ्य लाभ के लिए निराजना नामक संस्कार किए जाने का उल्लेख है।[57] जो नियम अश्वों की परिचर्या के लिए थे, वहीं गाय, बैल, भैंस, भेड़–बकरियों एवं गधों पर भी लागू थे।[58]

हाथी का सवारी तथा युद्ध दोनों में उपयोग होता था। कौटिल्य ने हाथियों को राजा की विजय का प्रमुख साधन बताया है। हाथीदांत से विभिन्न प्रकार की आकर्षक वस्तुएं बनाई जाती थीं। डियोडोरस के अनुसार भारत में असंख्य हाथी थे और उनकी नस्ल लीबिया के हाथियों से उत्तम थी।[59] मेगस्थनीज ने जंगली हाथियों को पकड़ने के तरीके का विवरण दिया है। परन्तु उसका यह कथन कि 'भारतीय हाथी इतने अधिक प्रशिक्षित हो जाते थे कि वे किसी निर्दिष्ट स्थान पर पत्थर फेंक सकते थे और अस्त्रों का भी प्रयोग कर सकते थे'[60], अतिरंजित लगता है। हाथी का उपहार बहुत

मूल्यवान माना जाता था। पोलीबियस (ई.सू. 220–196) ने लिखा है कि गंधार के राजा सुभगसेन ने यूनानी शासक एंटियोकस तृतीय को बहुत से हाथी भेंट किए थे।[61] सेल्यूकस से संधि करने के उपरांत चन्द्रगुप्त मौर्य ने उसे 500 हाथी दिये थे।[62] एरियन ने लिखा है कि सिंधु नदी के तटवर्ती क्षेत्र में शिकारी लोग हाथियों का शिकार करते थे।[63]

कौटिल्य[64] के अनुसार जो राजा अपने राज्य में हस्तिवन स्थापित करता है, उसे बहुत लाभ मिलता है। अशोक के स्तंभ–लेख पांच में नागवन (हाथियों का जंगल) का उल्लेख है। अर्थशास्त्र में कलिंग, अंग तथा अन्य पूर्वी देशों के हाथियों को उत्तम कोटि का बताया है, पूर्वी मालवा एवं अपरांत के हाथियों को मध्यम कोटि का और गुजरात तथा पंजाब के हाथियों को अधम कोटि[65] का। डील–डौल के आधार पर भी उन्होंने हाथियों को तीन वर्गों में विभक्त किया है–

1. सर्वोत्तम कोटि – 7 हाथ ऊँचा, 9 हाथ लंबा, 10 हाथ मोटा और चालीस वर्ष की आयु वाला।

2. मध्यम कोटि – तीस वर्ष की आयु वाला।

3. अधम कोटि – पच्चीस वर्ष की आयु वाला।

उपरिवर्णित आकारों के हाथियों की खुराक के विषय में भी कौटिल्य ने नियम बनाए थे।[66] ऊँट, गधा, सूअर आदि के भी उल्लेख हैं। उनके रख–रखाव, खुराक एवं उपचार के संबंध में मोटे तौर पर अन्य पशुओं वाले नियम लागू थे। मौर्य काल में भी कुत्ते रखवाली एवं शिकार में सहायता के लिए पाले जाते थे। वे राज्य के चरागाहों में हिंसक पशुओं से पालतू पशुओं की तथा राजाओं के अंतःपुर की रक्षा के लिए रखे जाते थे। इस काल में अपराधियों का पता लगाने में भी कुत्तों का उपयोग किया जाता था। यूनानी लेखकों ने भी भारतीय कुत्तों की बहुत प्रशंसा की है। झेलम के तटवर्ती क्षेत्र के शासक सौभूति ने सिंकदर को उत्तम नस्ल के तथा खूंखार 150 कुत्ते भेंट किये थे जो सिंह को भी काटने में नहीं हिचकते थे।[67]

नस्ल सुधारने के संबंध में कौटिल्य[68] ने निर्देश दिया कि 100 गदहियों एवं घोड़ियों के झुंड में 5 सांड; 100 भेड़–बकरियों में 10 बकरे और गायों, भैंसो तथा ऊटों में से प्रत्येक के झुंड में चार सांड छोड़े जाने चाहिए। प्रजननशालाओं पर भी कर लिया जाता था। अर्थशास्त्र[69] में पशुप्रतिकर शब्द का प्रयोग उन ग्रामों के लिए हुआ है जो राज्य को पशुओं के रूप में कर देते थे।

कौटिल्य[70] ने मुख्यतः राज्य द्वारा पालित पशुओं के संदर्भ में ही चरागाहों एवं चरवाहों का विवरण दिया है। उनके अनुसार

प्रत्येक ग्राम में बंजर मैदान (अकृष्टयाः) होने चाहिए जहां पशुओं के चरने के लिए चरागाह बनाए जा सकें। हर प्रकार के पशुओं के रहने तथा विचरण करने के लिए वन होने चाहिए। 'विवीताध्यक्ष' (चरागाहों के अधिकारी) सरकारी पशुओं को ऐसे स्थानों में चरने के लिए भेजता था जहां पर्याप्त घास आदि होती थी और हिंसक पशुओं का खतरा नहीं रहता था। वह नए चरागाह भी बनवाता था और पशुओं को पीने का पानी उपलब्ध कराने के लिए उचित व्यवस्था करता था।[71] कौटिल्य के अनुसार ऊसर भूमि में चरागाह बनवाने चाहिए।

कौटिल्य[72] ने उस गांव/क्षेत्र को आवास के लिए उपयुक्त बताया है जहां चरवाहे बड़ी संख्या में रहते हों। अधिकांश पशुपालक शूद्र वर्ण के थे। सरकारी पशुओं के चरवाहों को गोध्यक्ष के अधीन काम करना पड़ता था और उन्हें नगद वेतन अथवा दूध/घी, दही का एक निश्चित भाग दिया जाता था।[73]

गोपालक (गाय चराने वाले), पिंडारक (भैंस चराने वाले), दोहक (गाय–भैंस दुहने वाले) तथा हिंसक पशुओं से (पालतू पशुओं की) रक्षा करने वाले, इनमें से प्रत्येक वर्ग के चरवाहे पांच–पांच के समूहों में सौ–सौ सरकारी पशु चराते थे। शिकारियों, चोरों एवं हिंसक पशुओं आदि से पशुओं की रक्षा करने के अतिरिक्त बीमार, वृद्ध पशुओं की परिचर्या/उपचार करना भी पशुपालकों का कर्तव्य

एवं दायित्व था। ऋतुओं के अनुसार वे पशुओं को सुरक्षित वनों/चरागाहों में ले जाते थे। पशुपालक से यह भी अपेक्षा की जाती थी कि वह बीमारी, वृद्धावस्था अथवा किसी अन्य कारण से मरने वाले पशु के विषय में गोध्यक्ष को अविलंब सूचना दें और प्रमाणस्वरूप मृत भैंस का दगा हुआ चमड़ा, बकरी और भेड़ के चिन्हित कान और घोड़े, गधे तथा ऊंट की पूंछ लाकर दें। मेगस्थनीज को उद्धत करते हुए स्ट्रैबो[73] ने लिखा है कि पशुओं के मालिक, अपने पशु किराए पर भी देते थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मौर्यकालीन आर्थिक नियोजन में पशुओं का महत्वपूर्ण स्थान था। मौर्य काल में विभिन्न पशुओं यथा – गाय, भैंस, बैल, भेड़–बकरी, बिल्ली, ऊँट, गधा, खच्चर इत्यादि का पालन किया जाता था जिनका उपयोग कृषिजन्य कार्यों खाद्य सामग्री, यातायात, सुरक्षा इत्यादि उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता था। पशुओं तथा पशुपालन व्यवसाय करने वालों को राज्य द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाता था। इस प्रकार मौर्यकाल में पशुपालन का संगठित एवं नियोजित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

सन्दर्भ :

1 नीतिवाक्यामृतम्, 19.23.

2 चन्द्र, जगदीश : **जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज**, पृ. 112.

3 **बृहत्कल्पभाष्य**, 4.3323.

4 **विपाकसूत्र**, 2.19, 20,21.

5 **आदिपुराण**, 37.69.

6 सत्यकेतु विद्यालंकार : **मौर्य साम्राज्य का इतिहास**, पृ. 293

7 पूर्वदेश–गजशालीनामोदनः सुरभिः शुभः।
पंचालदेश मुद्रानां सूपः स्वादरसान्वितः ।।
हयंगवीनमुत्तप्तमपरांत भुवां गवाम्।
पयः कलिंगधेनूनां सुसृष्टं व्यजनांतरम्।।
–**जैन हरिवंशपुराण**, 18.161–62.

8 **आदिपुराण**, 30.98.

9 **आवश्यक निर्युक्ति**, 471.

10 **आदिपुराण**, 41.75.

11 **उपासकदशांक**, 1.12, 2.4.

12 **वसुदेवहिण्डी**, 1.13.

13 **बृहत्कल्पभाष्य**, 1.361.

14 बंधोपाध्याय, एन.सी.: **इकनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस**, पृ. 139.

15 **ऋग्वेद**, 1.164.27.

16 **ऋग्वेद**, 6.54.6.

17 **ऋग्वेद**, 6.28.8; 10.102.12; 6.29.2.

18 **शतपथ.**, 3.7.3.13; 3.7.1.20.

19 **वही**, 11.8.1.3.

20 **ऐतरेय ब्रा.**, 7.15.18.

21 **महाभारत, शांतिपर्व**, 186.20.

22 **पाणिनि अष्टा.**, 3.3.119.

23 **अर्थशास्त्र**, 2.29.
24 **अर्थशास्त्र**, 2.30.
25 **अर्थशास्त्र**, 2.31.
26 **अर्थशास्त्र**, 2.29.
27 **अर्थशास्त्र**, 2.30.
28 **अर्थशास्त्र**, 2.31.
29 न सस्यानि न गोरखा न कृषिर्न वणिक्यथः।—**विष्णु.**, 1.13.67.
30 **अर्थ.**, 7.11.
31 **अर्थ.**, 3.6.
32 **अर्थ.**, 2.6.
33 **अर्थ.**, 2.29.
34 **अर्थ.**, 2.18.
35 **अर्थ.**, 2.29.
36 **अर्थ.**, 2.29.
37 **अर्थ.**, 5.2.
38 **अर्थ.**, 3.10.
39 डी.सी. सरकार : **सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स** 1, पृ. 33–34.
40 **बी.सी.ला. कमेमोरेशन**, वाल्यूम 1, पृ. 482.
41 **अर्थ.**, 3.11.
42 **अर्थ.**, 4.10.
43 **अर्थ.**, 3.17.
44 **अर्थ.**, 3.16
45 **अर्थ.**, 3.19.
46 **अर्थ.**, 4.13.
47 मैक्रिंडल : **एंशियंट इण्डिया**, पृ. 134.
48 **अर्थ.**, 2.30.
49 **अर्थ.**, 2.42.
50 **अर्थ.**, 4.10.
51 डी.सी. सरकार : **सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स** 1, पृ. 16–17.
52 **वही** 1, पृ. 62–63.

53 **वही** 1, पृ. 65–66.
54 **अर्थ.**, 2.29–32.
55 **अर्थ.**, 7.12.
56 **अर्थ.**, 2.30.
57 नीराजना माश्वयुजे कारयेन्नवमेऽहनि।
यात्रादाववसाने वा व्याधो वा शांतिके रतः।। –**अर्थ.**, 2.30.
58 **अर्थ.**, 2.30.
59 **डियोडोरस**, 2.16.4; **स्ट्रैबो**, 15.1.43.
60 **कैम्ब्रिज हिस्ट्री** 1, पृ. 364.
61 मजुमदार : **एज ऑफ इंपीरियल यूनिटी**, पृ. 105.
62 नीलकांत शास्त्री (सं.):**दि एज ऑफ दि नंदज ऐंड मौर्यज**, पृ. 152.
63 खेर : **अग्रेरियन ऐंड फिस्कल इकोनामी**, पृ. 223.
64 **अर्थ.**, 7.12.
65 कलिंगांगजा श्रेष्ठाः प्राच्याश्चेति करुशजाः।
दाशार्णाश्चापरांताश्च द्विपानां मध्यमा मताः।।
सौराष्ट्रिकाः पांचनदाः तेषां प्रत्यवरा स्मृताः।। –**अर्थ.**, 2.2.
66 **अर्थ.**, 2.31.
67 **स्ट्रैबो**, 15.1.31;
राय चौधरी : **पोलिटिकल हिस्ट्री**, पृ. 251–52;
कैम्ब्रिज हिस्ट्री, पृ. 364–65.
68 **अर्थ.**, 2.29.
69 **अर्थ.**, 2.35.
70 **अर्थ.**, 2.35.
71 **अर्थ.**, 4.3; **चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल**, पृ. 141.
72 **अर्थ.**, 7.11
73 **स्ट्रैबो**, 15.1.41